THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

जैन धर्म परिचय

स्वर्गीया विदुषी चम्पावती जैन.

लेखकः—

पं० अजितकुमार जी शास्त्री.

वीर सेवा मन्दिर
दिल्ली

★

क्रम संख्या
काल नं०
खण्ड

"श्री चम्पावती जैन पुस्तकमाला" का पुष्प नं० १

॥ वन्दे जिनवरम् ॥

जैनधर्म परिचय

लेखक—

पं० अजितकुमार जी शास्त्री

मुलतान नगर।

प्रकाशक

मन्त्री—

"श्री चम्पावती जैन, पुस्तकमाला"

प्रकाशन विभाग—

भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ

अम्बाला, छावनी।

द्वितीयावृत्ति १००० | सन् १९३४ ई० । | मूल्य —)॥

* श्री *

जैन धर्म परिचय ।

नमः श्री वर्द्धमानाय निर्धूत कलिलात्मने ।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते ॥

जिस जैन धर्म का हम यहां पर संक्षिप्त परिचय देना चाहते हैं उस जैन धर्म का उदयकाल का (यानी उत्पत्ति के जमाने का) पता लगाना प्रचलित इतिहास और उसके बनाने वाले ऐतिहासिक विद्वानों के लिये बहुत कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव बात है। क्योंकि प्राचीन से प्राचीन शिला लेख, मूर्तियां; खण्डहरों आदि इतिहास सामग्री से जैन धर्म का अस्तित्व बहुत पहले जमाने में मानना पड़ता है यह तो ठीक है किन्तु वह कब किसने उत्पन्न किया ? किस महात्मा ने कब उसकी नीव डाली ? यह बात किसी भी ऐतिहासिक साधन से सिद्ध नहीं होती। इस कारण इतिहास वेत्ताओं को मानना पड़ता है कि जैन धर्म बहुत पहले जमाने से चला आ रहा है।

इस विषय में प्राचीन जैन इतिहास का उल्लेख करने वाले जैन ग्रन्थ (पुराण) जैन धर्म का उदय काल भरत क्षेत्र में आज से करोड़ों अरबों वर्षों पहले के जमाने में मानते हैं। वह इस तरह है:—

आज से अरबों वर्ष पहले इस भारतवर्ष में नाभिराय नाम के राजा थे। उनकी मरू देवी नाम की रानी थीं। उनके उदर से भगवान श्री ऋषभ देव का जन्म हुआ। ये ऋषभ देव बड़े अद्भुत पराक्रमी, प्रतापी और प्रभावशाली थे। इन्होंने अपने राज्य काल में लोगों को अनेक कलाएँ विद्याएँ सिखाईं थीं इनके एक सौ पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। पुत्रियों को पढ़ाने के लिये लिपि विद्या का आविष्कार भगवान ऋषभ देव ने किया था। इनके बड़े पुत्र का नाम भरत था जो कि इनके साधु हो जाने पर सर्व प्रिय, महा-प्रतापशाली चक्रवर्ती सम्राट् राजा हुआ था।

एक दिन भगवान ऋषभ देव अपने राज सिंहासन पर बैठे हुए नीलांजना नामक अपसरा का नाच देख रहे थे, नाचते नाचते अचानक उसकी मृत्यु हो गई। इस बात को जानकर राजा ऋषभदेव के मन में राज्य, भोग, विलास से उदासीनता हो गई और इस कारण राज्य भार भरत को देकर आप सब संसारी चीजें यहां तक कि अपने शरीर के कपड़े भी छोड़कर साधु बन गये। साधु बनकर इन्होंने बहुत भारी तपस्या की। साथ ही जब तक इन्होंने जीवन मुक्ति यानी सर्वज्ञता प्राप्त नहीं की तब तक किसी को उपदेश भी नहीं दिया, मौन रहे।

जिस समय भगवान ऋषभ देव सर्वज्ञ हो गये यानी समस्त दोषों से छूटकर त्रिकाल ज्ञाता हो गये तब इन्होंने मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सब जीवों को उपदेश दिया। चूंकि भगवान ऋषभदेव

काम, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि दुर्वासनाओं तथा मोहनीय आदि कर्मों को जीत चुके थे। इस कारण उनका नाम उस समय 'जिन' यानी कर्मों का जीतने वाला (जयतीति जिनः) प्रसिद्ध हुआ। इस कारण उनके बतलाये हुए मार्ग का नाम जैन धर्म पड़ा।

भगवान ऋषभदेव बहुत दिन तक जीवन मुक्त (अर्हन्त दशा) में धर्म का उपदेश सब जगह देते रहे। पीछे पूर्ण मुक्त हो गये। इनके द्वितीय पुत्र बाहुबली ने जो कि बड़े पहलवान बलवान थे। एक वर्ष तक खड़े रह कर घोर तपस्या करके भगवान ऋषभ देव से भी पहले मुक्ति प्राप्त की। इनकी मूर्ति गोम्मट स्वामी तथा बाहुबली के नाम से निर्माण होती रही है। इस समय श्रवण बेलगोला में चन्द्रगिरि पर्वत पर लगभग ५८ फुट ऊंची बहुत मनोहर मूर्ति विद्यमान है।

भगवान ऋषभ देव के धर्म मार्ग का (जैन धर्म का) प्रचार उनके अनुयायी साधु, राजा, महाराजा आदि करते रहे। फिर उनके बहुत समय पीछे क्रम से श्री अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दन, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रीयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, तीर्थङ्करों का अवतार हुआ जो कि भगवान् ऋषभदेव के समान अपने अपने समय में जैन धर्म का प्रचार करते रहे।

मल्लिनाथ के हजारों वर्ष पीछे मुनिसुव्रतनाथ तीर्थङ्कर का अवतार हुआ। इनके जमाने में रामचन्द्र, लक्ष्मण, रावण, विभीषण आदि हुए जिनका सीता के कारण युद्ध संसार में प्रसिद्ध है। फिर हजारों वर्ष पीछे नमिनाथ तीर्थङ्कर हुए। उनके पीछे भगवान नेमिनाथ का अवतार समुद्र विजय राजा के घर हुआ। भगवान नेमिनाथ कृष्ण बलभद्र के चचेरे भाई थे। इनके समय में महाभारत का युद्ध हुआ था। इनके पीछे भगवान पार्श्वनाथ का अवतार हुआ। उनके मुक्त होने से २५० वर्ष पीछे अन्तिम (चौबीसवें) तीर्थङ्कर भगवान महावीर का अवतार राजा सिद्धार्थ के घर आज से लगभग २५३२ वर्ष पहले हुआ। इन्होंने भी बहुत विशाल रूप से जैन धर्म का प्रचार किया और जन्म से ७२ वर्ष पीछे मुक्त हो गये।

भगवान महावीर स्वामी के समय में और उससे भी पहले ऋषभ देव, पार्श्वनाथ आदि तीर्थङ्करों की मूर्ति पूजी जाती थीं। ऐसा बहुत पुराने शिला लेखों से सिद्ध होता है। भगवान महावीर स्वामी के पीछे उनके अनुयायी, साधु, आचार्य्य, राजा, महाराजाओं ने जैन धर्म का प्रचार किया। सम्राट चन्द्रगुप्त भद्रबाहु आचार्य्य का भक्त शिष्य था। चन्द्रगुप्त के समय में १२ वर्ष का भारी अकाल पड़ा था। तब जैन सम्प्रदाय के दिगम्बर, श्वेताम्बर ये दो टुकड़े हो गये। दिगम्बर सम्प्रदाय के साधु बिना कपड़ा पहने पहले के समान नग्न रहकर तपस्या करते थे और अब तक इसी प्रकार रहते आये

हैं; किन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदाय के साधुओं ने बुरा समय देखकर कपड़े पहनना शुरू कर दिया।

इस प्रकार जैन धर्म के उदय और प्रचार का संक्षिप्त विवरण है। जो कि श्री नेमिनाथ तीर्थङ्कर से लेकर अब तक का तो आधुनिक इतिहास से भी सिद्ध होता है। उसके पहले इतिहास का कोई साधन नहीं है और न इतिहास ही उससे पहले जमाने तक अभी पहुँच पाया है। हाँ! भागवत आदि ग्रन्थों में भगवान ऋषभ देव का आठवें अवतार के नाम से जैन ग्रन्थों के अनुसार कुछ कुछ वर्णन पाया जाता है।

सिद्धान्त महोदधि महा महोपाध्याय डा० सतोशचन्द्र जी विद्याभूषण एम० ए० पी० एच० डी० ने लिखा है कि—"जैन मत तब से प्रचलित हुआ है जब से संसार में सृष्टि का आरम्भ हुआ है। मुझे इसमें किसी प्रकार का उज्र नहीं है कि जैन दर्शन वेदान्तादि दर्शनों से पूर्व का है।"

अब हम जैन धर्म के वर्णन पर आते हैं। जैन धर्म का पूर्ण खुलासा विवरण तो बहुत लम्बा चौड़ा है जिसके लिये बहुत बड़े ग्रन्थ बनाने के साधन जुटाने पड़ेंगे किन्तु हम यहाँ संक्षेप से उस विषय को रखते हैं। जैन धर्म का विवरण संक्षेप से दो रूप में किया जा सकता है। (१) सिद्धान्त *, (२) आचरण †। इन ही दो रूपों से हम यहाँ जैन धर्म का परिचय पाठकों के सामने रखते हैं।

* (Philosophy) † (Religion)

जैन सिद्धान्त ।

जैन सिद्धान्त में मूल दो पदार्थ माने गये हैं। जीव और अजीव। जिसमें ज्ञानादि गुण पाये जाते हैं, जो जानता देखता है वह जीव है और जिसमें जानने देखने की शक्ति नहीं वह अजीव पदार्थ है। इन्हीं दोनों पदार्थों में सारे पदार्थ शामिल हो जाते हैं।

जीव दो प्रकार के होते हैं—मुक्त जीव तथा संसारी जीव।

मुक्त जीव वे हैं जो कर्म जंजाल को अपने आत्मा से बिलकुल दूर कर चुके हैं, जो फिर कभी जंजाल में फँसकर संसारी नहीं बनेंगे। जिनके ज्ञान, दर्शन, सुख आदि समस्त आत्मिक गुण पूर्ण, शुद्ध प्रगट हो चुके हैं, जिनके न शरीर है, न इच्छा है और न किसी प्रकार का दुःख है, भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों काल की सारी बातों को साफ़ जानते हैं। उनको परमात्मा, ईश्वर, सिद्ध आदि भी कहते हैं। वे एक नहीं अनेक हैं। संसारी जीव वे हैं जो इस संसार में अपने कर्मों के कारण तरह तरह के शरीर, योनि पाते हुये घूमते रहते हैं। अपने २ कर्मों के अनुसार जिनको सुख दुःख आदि मिलते रहते हैं।

संसारी जीवों के पाँच प्रकार हैं, एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पाँच इन्द्रिय। जिन जीवों के एक ही स्पर्शन (छूने का ज्ञान कराने वाला यानी त्वचा) इन्द्रिय हो वे एकेन्द्रिय जीव हैं। जैसे—जमीन, पानी, हवा और पेड़। इनमें से जिनमें आत्मा मौजूद हो वह जीव होता है। जैसे—हरा,

फलने-फूलने वाला पेड़ और जिसका जीव निकल चुका हो वह अजीव हो जाता है, जैसे—सूखा पेड़। इन एकेन्द्रिय जीवों को स्थावर जीव भी कहते हैं। इनके शरीर में खून, हड्डी, चर्बी आदि नहीं होते सिर्फ रस होता है।

दो इन्द्रिय जीव वे हैं जिनके स्पर्शन और जीभ ये दो इंद्रियाँ हैं। जो अपनी दोनों इंद्रियों से छूकर ठंडक, गर्मी आदि जान सकते हैं तथा चखकर खट्टा, मीठा आदि स्वाद भी समझ सकते हैं। जैसे—केंचुआ, गेंडुआ, शङ्ख, कौड़ी, सीप आदि। कौड़ी, शङ्ख, सीप जब पानी में होते हैं पानी के ऊपर नीचे आते जाते हैं, घूमते फिरते हैं तब उनमें जीव होता है। जब वह मर जाता है तब सूखी हड्डी रह जाती है।

जिन जीवों के चमड़ा, जीभ और नाक ये तीन इन्द्रियाँ ही होती हैं यानी जो छूने, स्वाद चखने और सूँघकर सुगन्ध दुर्गन्ध जानने की ताकत रखते हैं वे तीन इन्द्रिय जीव होते हैं। जैसे—बीछू, खटमल, जू आदि।

जिनके इन तीनों इन्द्रियों के सिवाय आँख चौथी इन्द्रिय भी पाई जाती है यानी जो तीन इन्द्रिय जीव से देखने की ताकत और अधिक रखते है वे चार इन्द्रिय जीव होते हैं। जैसे—मक्खी, मच्छर, टिड्डी, पतङ्गा आदि छोटे उड़ने वाले जन्तु।

पांच इन्द्रिय जीव वे होते हैं जिनके समस्त इन्द्रियाँ होती हैं जो छूकर, चखकर, सूँखकर, देखकर और सुनकर जानते हैं। चार इन्द्रिय जीवों से इनमें 'कान' नामक इन्द्रिय और ज्यादा

पाई जाती है। जैसे—आदमी, हाथी, घोड़ा, बैल, साँप, कबूतर, चूहा आदि।

दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पाँच इन्द्रिय जीव त्रस कहलाते हैं इन जीवों के शरीर में खून, हड्डी, मांस होता है।

एकेन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रिय तक के जीवों के मन नहीं होता है। इस कारण वे कोई शिक्षा, क्रिया आदि सिखलाने से नहीं सीख सकते। पाँच इन्द्रिय जीवों में दोनों तरह के जीव होते हैं। कुछ एक जीवों के मन नहीं होता है किन्तु शेष प्राय: सभी के मन पाया जाता है। इसी कारण उनको यदि कोई शिक्षा दी जावे, कोई काम सिखलाया जावे तो अपनी शक्ति अनुसार सीख जाते हैं।

इन जीवों में से एकेन्द्रिय से चार इन्द्रिय तक के तो सभी जीव तिर्यञ्च यानी पशु गति वाले कहे जाते हैं। पंचेन्द्रिय जीवों में गाय, घोड़ा, साँप, कबूतर आदि पशु पशुगति के जीव हैं। मनुष्य शरीर वाले स्त्री-पुरुष मनुष्यगति के जीव हैं। नरकों में रहने वाले नारकी जीव नरक गति के जीव हैं और देव-शरीर में मौजूद जीव देवगति के जीव कहे जाते हैं।

अजीव।

अजीव पदार्थ के मूल दो प्रकार हैं—एक तो वह जिसमें रस, गंध, रंग, ठंडक, गर्मी आदि पाई जाती है। जो देखने में, सूंघने में, चखने में और छूने में आता या आ सकता है। इस

पदार्थ का नाम जैन सिद्धान्त में पुद्गल (मैटर) बतलाया है। हम जितनी भी चीजें देखते हैं या अन्य नाक, जीभ, चमड़ा, कान इन्द्रियों से जिनको जानते हैं वे सब पुद्गल हैं। मकान, लकड़ी, पत्थर, कागज आदि सभी चीजें पुद्गल हैं। यहाँ तक कि जीव के रहने का शरीर भी पुद्गल है। जीवित शरीर में जीव पाया जाता है और निर्जीव यानी मृतक -मुर्दा शरीर में जीव नहीं होता केवल पुद्गल ही होता है।

दूसरे अजीव पदार्थ वे होते हैं जिनमें रंग, रस, गंध, ठंडक, गर्मी नहीं पाई जाती जो देखने में तथा अन्य भी इन्द्रियों से पकड़ने में नहीं आते। उनको अमूर्तिक कहते हैं।

अमूर्तिक अजीव पदार्थ चार तरह का है। धर्म, अधर्म, आकाश और काल। जिसमें सब जीव, पुद्गल आदि पदार्थ रहते हैं। उस पोल पदार्थ का नाम आकाश है। यह पदार्थ अनन्त है। सब जगह मौजूद है।

जो चीजों की हालतें बदलने में सहायता करता है। वर्ष, महीना, दिन, घड़ी, घण्टा, मिनट, सैकिण्ड आदि नाम रखकर जिसका व्यवहार किया जाता है वह काल नामक पदार्थ है। जहाँ तक जीव, पुद्गल आदि पदार्थ पाये जाते हैं वहाँ तक काल भी मौजूद हैं।

जो जीव, पुद्गलों के हलन, चलन में बाहरी सहायता करता है। आते, जाते, गिरते, पड़ते, हिलते, चलते पदार्थ को उसकी हरकत में मदद करता है। उसका नाम धर्म पदार्थ है। जहाँ

तक जीव पुद्गल पाये जाते हैं यह पदार्थ भी वहाँ तक पाया जाता है। अँग्रेजी में इस पदार्थ को ईथर के रूप में माना है। अमूर्तिक होने से यह पदार्थ नजर नहीं आता।

अधर्म पदार्थ वह कहलाता है जो समस्त पदार्थों को ठहरने (स्थिर रहने) में बाहरी सहायता करता है—जैसे मुसाफिर को पेड़ की छाया। यह भी अमूर्तिक होने से दीख नहीं पड़ता। लोकाकाश में सब जगह मौजूद है।

इस प्रकार जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छह द्रव्य हैं।

पुद्गल द्रव्य।

पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है इस कारण दिखलाई देता है। इसमें चार विशेष गुण पाये जाते हैं। रंग, गंध, रस और स्पर्श (ठंडा, गर्म आदि छूने का विषय) यद्यपि ये चारों गुण प्रत्येक पुद्गल पदार्थ में पाये जाते हैं किन्तु किसी किसी पदार्थ में कोई कोई गुण सूक्ष्म यानी इन्द्रियों से न जान सकने योग्य और कोई कोई गुण स्थूल यानी इन्द्रियों द्वारा जान सकने योग्य होता है। जैसे हवा में स्पर्श गुण (ठंडी, गर्म) तथा कभी गन्ध गुण (खुशबू, बदबू) तो स्थूल हैं किन्तु रंग और रस सूक्ष्म हैं। इस कारण वे दोनों गुण मालूम नहीं हो पाते।

किन्तु जिस समय वही हवा पानी के रूप में बन जाती है। तब उसके वे दोनों गुण भी प्रगट हो जाते हैं इस कारण पानी

की हालत में हवा का पुद्गल (मैटर) चखने में और देखने में आ जाता है।

आग में रंग, स्पर्श मालूम होते हैं रस, गन्ध मालूम नहीं होते किन्तु वे उसमें हैं अवश्य। उस समय सूक्ष्म रूप में हैं। हालत बदलने पर वे दोनों गुण भी मालूम होने लगते हैं।

शब्द पुद्गल है उसके तीन गुण सूक्ष्म हैं। किन्तु स्पर्श कुछ जाहिर होता है। शब्द पुद्गल है इसी कारण पुद्गल पदार्थों से (बाजे, मुख, तोप आदि से) वह पैदा होता है। टेलीफोन, ग्रामोफोन, लाऊड स्पीकर, बेतार का तार, तार आदि यन्त्रों से पकड़ में आ जाता है, बन्द कर लिया जाता है, दूर भेज दिया जाता है। बिजली, तोप आदि के भयंकर शब्द से कान के परदे फट जाते हैं, जोरदार शब्दों के आघात (टक्कर) से स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं, पहाड़ की चट्टानें गिर पड़ती हैं। ऐसी जोरदार टक्कर पुद्गल पदार्थ हुए बिना नहीं हो सकती।

पुद्गल की दशा।

पुद्गल दो दशाओं में होता है, परमाणु और स्कन्ध। परमाणु पुद्गल का सब से छोटा अखण्ड टुकड़ा है। उन टुकड़ों के आपस में मिलकर बने हुये बड़े टुकड़ों को स्कन्ध कहते हैं।

शब्द एक विशेष प्रकार का पुद्गल है। उसके स्कन्ध सब जगह भरे हुये हैं।

अन्धकार और प्रकाश (उजाला) भी पुद्गल है। जिस समय सूर्य, चन्द्र, दीपक, बिजली आदि का संयोग मिलता है तब सब जगह भरे हुए पुद्गल स्कन्धों में अपनी जगह सफेद चमकीला रंग प्रकट हो जाता है। जिससे आँखों से दीख पड़ने योग्य प्रकाश बन जाता है और जिस समय उनका संयोग हट जाता है तब उन्हीं पुद्गल स्कन्धों में गहरा काला रंग जाहिर हो जाता है। जिससे अन्धेरे का रूप खड़ा हो जाता है।

इस प्रकार पुद्गल (मैटर) अनेक दशाओं में पाया जाता है और उलटता पलटता भी रहता है। धूप, छाया, प्रकाश, अन्धकार, चाँदनी, शब्द आदि सब पुद्गल की हालते हैं। कभी पानी से हवा, कभी हवा से पानी, कभी पानी से बिजली, कभी पार्थिव (जमीन की चीज) से हवा आदि बन जाता है। जहाँ जैसा निमित्त कारण मिलता है। पुद्गल पदार्थ वैसी हालतों में बदल जाते हैं।

कर्म सिद्धान्त।

पुद्गल स्कन्धों में एक विशेष प्रकार के पुद्गल स्कन्ध होते हैं उनका नाम कार्माण स्कन्ध हैं। ये पुद्गल स्कन्ध सब जगह मौजूद है और केवल कर्म बनने के काम आते हैं।

जीव के भीतर एक योग नामक आकर्षण शक्ति (कशिश करने की ताकत) है और कार्माण स्कन्धों में आकर्षण (कशिश)

होने की शक्ति है। जैसे कि चुम्बक पत्थर और लोहे के भीतर रहती है।

जिस समय कोई संसारी जीव काम, क्रोध, अभिमान, फरेब, लालच, प्रेम, बैर, डर, शोक, हर्ष, हिंसा, विषय सेवन, चोरी, परोपकार, दया, दान आदि किसी विचार कार्य या बोलने में लग जाता है। उस समय उस जीव की वह योग शक्ति अपने पास वाले कार्माण पुद्गल स्कन्धों को आकर्षण (कशिश) कर लेती है। वे आकर्षित (कशिश किये हुए) पुद्गल आत्मा के साथ मिलकर एकमेक हो जाते हैं।

योग शक्ति से कशिश किये हुए और उसके पीछे आत्मा के साथ एकमेक मिले हुए पुद्गल स्कन्धों को ही कर्म कहते हैं। आत्मा के साथ मिल जाने पर उन कर्मों के भीतर विशेष शक्तियां उत्पन्न हो जाती हैं। आत्मा में उस समय जैसे विचार कार्य मौजूद हों उन नवीन कर्मों में वैसी ही शक्ति पैदा हो जाती है। जैसे अगर जीव का उस समय विचार परोपकार का हो तो कर्मों में शक्ति भला, लाभ (फायदा) करने की पैदा होगी और यदि किसी का बुरा कराने का विचार उस जीव में हो तो उन कर्मों में बुरा करने की शक्ति पैदा हो जायगी।

कर्म बनने के साथ हो साथ उन कर्मों में जीव के साथ लगे रहने की अपनी शक्ति के अनुसार जीव को सुख दुख देने की स्थिति (मियाद समय की) भी पड़ जाती है। जीव की अगर तीव्र (तेज) योग शक्ति होती है कर्मों में मियाद और सुख दुख

आदि फल देने की ताकत बड़ी पड़ जाती है। तथा यदि योगशक्ति मन्द हो आकर्षण करते समय जीव के भले, बुरे विचार हलके, मन्द हों तो कर्मो में मियाद थोड़ी पड़ेगी और फल देने की शक्ति भी मन्द ही पैदा होगी।

जिस समय उस कर्म के फल देने का समय आवेगा तब वह कर्म जीव को अपनी उस शक्ति से ऐसा बना देगा जिससे जीव बाहरी चीजों के निमित्त से ऐसा कार्य कर बैठेगा जिसके कारण कर्म शक्ति के अनुसार उसको फल मिल जायगा।

मान लीजिये सुख देने वाले कर्म का उदय (समय) आया है तो जीव की बुद्धि, क्रिया और बाहरी निमित्त साधन उसको ऐसे मिलेंगे जिससे उसको सुख पाने का अवसर (मौका) मिल जावेगा। इसी प्रकार दुख देने वाले कर्म के उदय आने पर उसके कार्य, बुद्धि स्वयं दुख पैदा करने वाले पदार्थ, कार्य में लग जावेंगे।

इस प्रकार कर्म यद्यपि अजीव हैं, जड़ हैं, ज्ञान रहित हैं किन्तु शराब, बिजली, गैस आदि पदार्थों के समान जीव के संयोग से विचित्र शक्तिशाली हो जाते हैं। यहां तक शक्ति (स्प्रिट) उनमें पैदा हो जाती है कि किये हुए अच्छे बुरे कर्त्तव्यों (कामों) के अनुसार अच्छे बुरे शरीर में जन्म धारण करने के लिये भी बेतार के तार के समान कर्म आत्मा को उस जगह पहुँचा देते हैं।

सारांश यह है कि जैसे शराब मनुष्य को पागल बना देती है उसी प्रकार कर्म भी जीव को अपना समय आने पर एक

प्रकार का पागल बना देते हैं। इस प्रकार एक तरह से जीव कर्म करते समय स्वतन्त्र (आज़ाद) और उसका फल पाते समय परतन्त्र (गुलाम) होता है।

जीव हर एक समय किसी न किसी प्रकार का कर्म तैयार करता रहता है और हर समय किसी न किसी कर्म का फल (नतीजा) भी उठाता रहता है। हां ! यह अवश्य है कि यदि अपनी ज्ञान शक्ति से कर्म बनने के कारणों को अच्छे बुरे विचारों, कार्यों को कम कर दे तो कर्मों की शक्ति घटनी शुरू हो जायगी और जीव की शक्ति बढ़नी शुरू हो जायगी। यदि वह लगातार उस तरह करता रहे तो कोई समय ऐसा भी आ जावेगा कि पुराने सब कर्म समाप्त (खतम) हो जायंगे और नया कर्म कोई भी न बन पावेगा। तब वह जीव पूर्ण स्वतंत्र (आज़ाद) हो जायगा। बन्धन से छूट जायगा, मुक्त हो जायगा और उसके समस्त आत्मिक गुण पूर्ण निर्मल हो जावेंगे। फिर कर्म बनने योग्य उसके पास कोई कारण न रहेगा इस कारण फिर जंजाल में भी नहीं फँस सकेगा।

कर्मों के भेद।

कर्म आठ तरह के हैं। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय।

जीव के ज्ञान गुण को कम करने वाला ज्ञानावरण कर्म है।

जीव के दर्शन गुण पर परदा डालने वाला कर्म दर्शनावरण होता है।

सांसारिक—सुख, दुख, रूप वेदना पैदा करने वाला कर्म वेदनीय कहलाता है ।

काम, क्रोध, अभिमान, माया, लोभ, मोह आदि वासनायें पैदा करने वाला कर्म मोहनीय है ।

किसी भी शरीर में जीव को रोक रखने के समय की मियाद को देने वाला आयु कर्म होता है ।

अच्छे, बुरे शरीर को पैदा करना नाम कर्म का कार्य है ।

अच्छे बुरे कुल में (ऊँच नीच जाति में) जीव को उत्पन्न कराना गोत्र कर्म का काम है ।

होते हुए किसी कार्य में विघ्न डाल देना अन्तराय कर्म की कार्यवाही है ।

इस प्रकार कर्मों के ये मूल आठ भेद हैं किन्तु शाखाभेद बहुत से हैं ।

इस कर्म सिद्धान्त का खुलासा वर्णन बहुत लम्बा चौड़ा है । इसी कारण इस अकेले विषय पर बहुत बड़े ग्रन्थ बने हुए हैं । संकोच करने के विचार से इस विषय को हम यहीं पर समाप्त करके आचरण विषय पर आते हैं

आचरण

जैन धर्म पालन करने वाले दो भागों में बाँटे जा सकते हैं । एक गृहस्थ और दूसरे मुनि ।

जो घर में रहकर जैन धर्म का पालन करें वे गृहस्थ या श्रावक कहलाते हैं और जो घर बार छोड़कर साधु बनकर ऊँचे दर्जे का आचरण पालते हैं वे मुनि कहलाते हैं।

मुनि और गृहस्थ श्रावकों को अपने २ दर्जे के अनुसार पालन करने योग्य जो एक बात है वह है "रत्नत्रय" रत्नत्रय का धारण करना जिस प्रकार गृहस्थ के लिये आवश्यक है उसी प्रकार मुनि के लिये भी आवश्यक है।

रत्नत्रय।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र इन तीन बातों को रत्नत्रय कहते हैं। गृहस्थ को इन तीनों को किस प्रकार धारण करना चाहिये प्रथम ही इस बात को बतलाते हैं।

सम्यग्दर्शन।

देव, शास्त्र गुरू का अपने सच्चे हृदय से श्रद्धान करना, (विश्वास—यकीन रखना) जैन सिद्धान्त में बतलाये पदार्थों को तथा उसकी अन्य बातों का सच्चा विश्वास (यकीन) करना सम्यग्दर्शन है। जैनी के लिये सबसे पहले देव, शास्त्र और गुरू को अपना पूज्य, आराध्य समझ कर उनका विश्वास करना आवश्यक है।

देव।

जैन धर्म में देवों के मूल दो भेद माने गये हैं। अर्हन्त और सिद्ध। पूर्ण मुक्त हुये अर्थात् आठ कर्मों को अपने आत्मा से दूर करके मोक्ष स्थान में पहुँचे हुये परमात्मा को सिद्ध कहते हैं।

सिद्ध होने से पहले ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार कर्मों को आत्मा से बिलकुल दूर करके जीवन मुक्त दशा में मौजूद परमात्मा को अर्हन्त देव कहते हैं। संसारी जीवों को धर्म का उपदेश अर्हन्त भगवान से प्राप्त होता है। इस कारण सिद्ध परमात्मा की अपेक्षा अर्हन्त भगवान की गृहस्थ लोग अधिक उपासना करते हैं।

सच्चे देव के विशेष चिन्ह।

सच्चा देव वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी होना चाहिये जिनमें ये बात पाई जावे वह सच्चा देव है। जिसमें ये बातें न हों वह सच्चा देव नहीं है।

राग, द्वेष, मोह, चिन्ता, अभिमान, जन्म, मरण, शोक, भय, आश्चर्य, रोग, खेद, भूख, प्यास, बुढ़ापा, पीडा, नींद, पसीना ये दोष जिसमें नहीं पाये जाते हों अर्थात् जो किसी भी पदार्थ से न प्रेम करता हो न किसी को बुरा समझता हो इसी प्रकार जिसको किसी प्रकार का अभिमान, डर, मोह, चिन्ता, भूख, प्यास आदि न हो उसको वीतराग कहते हैं।

समस्त संसार की भूत, भविष्यत्, वर्तमान की समस्त बातों को पदार्थों की हालतों को जो एक साथ स्पष्ट जाने अर्थात् सारे संसार में जो पहले हो चुका है, अब हो रहा है और जो कुछ आगे होगा उसको जो ठीक ठीक जानने वाला हो वह सर्वज्ञ कहलाता है।

जो समस्त जीवों को सच्चा हितकारी उपदेश दे वह हितोपदेशी है।

ये तीनों बातें जिसमें हो वह 'अर्हन्त भगवान' जैनियों का पूज्य परमात्मा है। उस अर्हन्त भगवान की ही वीतराग मूर्ति (कपड़े, गहने आदि सजावट रहित) बनाकर मन्दिर में जैन लोग पूजते हैं।

यहां इतना ध्यान रखना चाहिये कि मनुष्यों की आँखें बाहर जैसी तसवीर, मूर्ति, आकार देखती हैं वैसा ही प्रभाव उनके हृदय पर पड़ता है। जैसे किसी शूरवीर की तसवीर देखने से हृदय में शूरवीरता और सुन्दर व्यभिचारिणी स्त्री का चित्र देखने से खराब भाव मन में पैदा होते हैं। इसी प्रकार अर्हन्त भगवान की शान्त, वीतराग मूर्ति देखने से शान्ति, वीतरागता का असर हृदय पर पड़ता है। इसी कारण जैनी अर्हन्त मूर्ति का दर्शन पूजन करते हैं। यानी वे मूर्ति के सहारे से मूर्ति वाले अर्थात् अर्हन्त भगवान का दर्शन, पूजन उन सरीखी शान्ति, वीतरागता प्राप्त करने के लिये करते हैं।

शास्त्र।

अर्हन्त भगवान का उपदेश तथा सिद्धान्त (फिलोसफी) जिन ग्रन्थों में लिखा हुआ है वे जैनियों के मानने योग्य शास्त्र होते हैं। अर्हन्त भगवान का उपदेश और सिद्धान्त गुरू शिष्य परम्परा से चला आता है। सच्चे शास्त्र को आगम, जिनवाणी भी कहते हैं।

सच्चा गुरु।

जिसने घर, धन, स्त्री, पुत्र, मित्र, कपड़े, आभूषण आदि सारे संसारी पदार्थों को बुरा समझ छोड़ दिया हो, जो जङ्गल में रहकर आत्मा का ध्यान, तपस्या करता हो, दिन में एक बार शुद्ध अपने हाथों में गृहस्थों के घर भोजन करता हो। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-सेवन, परिग्रह (संसारी चीज़ों को अपनाना) इन पाँच पापों को बिलकुल छोड़ कर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह त्याग ये पांच महाव्रत पालता हो। जो शत्रु से क्रोध न करे और मित्र से प्रेम भाव न करे शान्त, निःस्पृह, नग्न हो वह सच्चा गुरु है। इसको मुनि, साधु भी कहते हैं।

मुनियों में जो सबसे ऊँचे पद के होते हैं मुनि जिनकी आज्ञानुसार चलते हैं वे आचार्य्य कहलाते हैं। जो मुनियों में सबसे अधिक विद्वान होते हैं और जो मुनियों को पढ़ाते हैं वे उपाध्याय कहलाते हैं।

अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य्य, उपाध्याय और मुनि (साधु) ये पांच परमेष्ठी (सबसे अधिक ऊँचे पद पर विराजमान) कहे जाते हैं।

इस प्रकार गृहस्थ जैन, इन देव, शास्त्र, गुरु को अपना पूज्य आराध्य समझकर इनका दर्शन, पूजन, विनय, सत्कार करते हैं, शास्त्र पढ़ते हैं।

सम्यग्ज्ञान ।

सम्यग्दर्शन हो जाने पर ज्ञान का नाम सम्यग्ज्ञान होता है। अर्थात् जब तक सच्चे देव, गुरु, शास्त्र का तथा अर्हन्त भगवान के बतलाये हुये सिद्धान्त का सच्चा श्रद्धान (विश्वास-यकीन) न होवे तब तक ज्ञान मिथ्याज्ञान कहलाता है। सच्चा श्रद्धान हो जाने पर उसको सम्यग्ज्ञान कहते हैं। अर्थात् देव, शास्त्र, गुरु का और जैन सिद्धान्त (जैन फिलासफी) का विश्वास रखकर गृहस्थ को अपना ज्ञान शास्त्रों से बढ़ाते रहना चाहिये।

सम्यक्चारित्र ।

पाप मार्ग को छोड़कर सदाचार ग्रहण करना सम्यक्चारित्र है।

इस सम्यक्चारित्र को जघन्य श्रेणी का (सबसे नीचे दर्जे का) श्रावक जिसको कि पाक्षिक भी कहते हैं, बहुत छोटे रूप में आचरण करता है। जिनेन्द्र भगवान का प्रति दिन दर्शन करना, शराब, मांस नहीं खाना, पानी छानकर पीना, रात का कम से कम अन्न की बनी हुई चीज नहीं खाना इतना आचरण वह सब से नीचे दर्जे का जैनी पालता है।

इससे आगे गृहस्थ जैनके ११ दर्जे हैं जिन्हें प्रतिमा कहते हैं। उनका आचरण करने वाला 'नैष्ठिक' श्रावक कहलाता है। इन प्रतिमाओं का आचरण आगे आगे बढ़ता गया है और अगली प्रतिमा के चारित्र को पालते हुए उससे पहिली प्रतिमाओं का अवश्य होना चाहिये। प्रतिमाओं का संक्षेप विवरण यों है।

१—दर्शन प्रतिमा।

शराब, मांस और मधु (शहद) खाने का त्याग करना तथा अँजीर, गूलर, पाकर, बड़ और पीपल (पेड़ का फल) खाना छोड़ना एवं "जुआ खेलना, शिकार खेलना, नशीली चीजों का सेवन, मांस खाना, चोरी करना, वेश्या सेवन करना और पर-स्त्री सेवन" (दूसरे पुरुष की औरत से व्यभिचार) इन सात कुव्यशनों का त्याग करना, सम्यग्दर्शन को निर्दोष धारण करना पहली दर्शन प्रतिमा है। मधु, अंजीर आदि में त्रस जीव होते हैं।

२—व्रत प्रतिमा।

बारह व्रतों का नियम से पालना व्रत प्रतिमा है। बारह व्रत संक्षेप से इस प्रकार हैं।

१—अहिंसा अणुव्रत-त्रस (दो इन्द्रिय आदि) जीवों को जान बूझकर नहीं मारना अहिंसा अणुव्रत है। व्यापार में, रसोई, मकान आदि बनाने में, तथा शत्रु से लड़ने भिड़ने में जो हिंसा होती है उस हिंसा का त्याग नहीं होता है।

२—सत्य अणुव्रत–धर्म घातक, दूसरे का प्राण घातक, पंचायत द्वारा दण्डनीय तथा राज्य से दण्ड (सजा) पाने योग्य झूठ बोलने का त्याग सत्य अणुव्रत है।

३—अचौर्य अणुव्रत-पानी, मिट्टी आदि चीजों को छोड़कर जिस पर कि खास किसी एक पुरुष का अधिकार नहीं है सब कोई ले सकता है और किसी भी वस्तु को उसके स्वामी (मालिक) के पूछे बिना नहीं लेना सो अचौर्य अणुव्रत है।

४—ब्रह्मचर्य अणुव्रत-अपनी विवाही हुई स्त्री के सिवाय शेष सब स्त्रियों को माता, बहिन, पुत्री, समान समझ कर किसी के साथ भी दुराचार नहीं करना ब्रह्मचर्य अणुव्रत है।

५—परिग्रह परिमाण अणुव्रत-मकान, धन, पशु, कपड़े, गहने, जमीन, सवारी आदि संसारी पदार्थों का अपने काम अनुसार नियम कर लेना कि "मैं इतना रक्खूंगा अधिक नहीं" परिग्रह परिमाण अणुव्रत है।

६—दिग्व्रत-पूर्व, पश्चिम, ऊपर (पहाड़ आदि) नीचे (कुँआ आदि) इत्यादि दिशाओं में जन्म भर तक आने जाने की सीमा (हद) बाँध लेना और उससे बाहर न जाना सो दिग्व्रत है।

७—कुछ समय के लिये जितनी थोड़ी जगह में अपना काम चल सकता हो उतनी जगह यानी घर, मुहल्ला, शहर आदि के आने जाने का नियम कर लेना देशव्रत है।

८—अनर्थ दण्ड त्याग व्रत-बिना मतलब जिन कार्यों में पाप कर्म बन्धें, पाप लगे उन कार्यों का छोड़ना अनर्थ दण्ड त्याग व्रत है। जैसे किसी को विष, हथियार आदि देना, बिना मतलब पानी बखेरना, पेड़ तोड़ना, जमीन खोदना, खराब कथाओं का सुनना सुनाना आदि।

९—सामयिक-सुबह, शाम और दोपहर को कुछ समय के लिये प्रतिज्ञा पूर्वक हिंसा, झूठ आदि पापों का पूर्ण त्याग करके संसार की दशा, धर्म का अपनी आत्मा आदि का

विचार करना, सामायिक पाठ पढ़ना तथा मन्त्रों की माला फेरना सामायिक है।

१०—प्रोषधोपवास व्रत—अष्टमी, चतुर्दशी को कम से कम एकाशन (एक बार भोजन) करना तथा अधिक से अधिक १६ पहर का भोजन छोड़ मन्दिर में बैठकर धर्म ध्यान में समय लगाना प्रोषधोपवास व्रत है। सोलह पहर का व्रत करने वाला अष्टमी, चतुर्दशी तिथि से एक दिन पहले और एक दिन पीछे, एकाशन करता है तथा उस दिन उपवास (बिलकुल कुछ नहीं खाना) करता है।

११—भोगोपभोग परिमाण—भोग्य (जो पदार्थ एक बार भोग में आकर फिर भोगने में न आवे जैसे भोजन, तेल, फूल माला आदि) और उप-भोग्य (जो पदार्थ बार बार काम में लाये जा सकें जैसे कपड़े, गहने, मकान, सवारी आदि) पदार्थों का अपने योग्य नियम कर लेना शेष पदार्थों को छोड़ देना भोगोपभोग परिमाण व्रत है।

१२—अतिथिसंविभाग व्रत—साधुओं के लिये तथा ब्रह्मचारी, क्षुल्लक, ऐलकादि सदाचारी श्रावक के लिये एवं दीन, असमर्थ अपाहिज के लिये "भोजन, ज्ञान प्राप्ति के साधन (पुस्तक आदि) औषधि (दवा) और अभय (डर मिटाने के साधन)" ये चार प्रकार का दान देना सो अतिथिसंविभाग व्रत है।

इन बारह व्रतों का पालने वाला दूसरी प्रतिमा वाला व्रती श्रावक होता है।

३—सामायिक प्रतिमा ।

प्रति दिन प्रातःकाल शाम को और दोपहर को तीनों समय नियम से निर्दोष सामायिक करना सामायिक प्रतिमा है ।

व्रत प्रतिमा वाला सामायिक नियम से तीन वार और निर्दोष नहीं करता है । उसको सामायिक शिक्षा व्रत के रूप में हैं, तीसरी प्रतिमा वाला नियम से तीन वार निर्दोष सामायिक करेगा । यही इन दोनों में अन्तर है ।

४—प्रोषध प्रतिमा ।

प्रत्येक अष्टमी, चतुर्दशी को घर, व्यापार आदि के कार्यों को छोड़ कर नियम से १६ पहर का निर्दोष प्रोषध उपवास (यानी पहिले और तीसरे दिन एक बार तथा उस अष्टमी चतुर्दशी के एक दिन सर्वथा भोजन का त्याग करना सो चौथी प्रोषध प्रतिमा है ।

व्रत प्रतिमा में प्रोषधोपवास नियम १६ पहर का नहीं किया जाता । कम समय का भी किया जाता है, सदोष भी होता है । शिक्षा व्रत रूप में है । वह बात यहाँ नहीं है ।

५—सचित त्याग प्रतिमा ।

फल, फूल, शाक आदि बनस्पति (सब्जी) सचित (जीव सहित यानी हरी) नहीं खाना सूखी खाना (सूखे मेवा आदि) तथा पानी आदि भी सचित (कच्चा) न पीकर पका हुआ (आग पर औटा हुआ) पीना सचित त्याग प्रतिमा का आचरण है ।

६—रात्रि भोजन त्याग प्रतिमा।

मन, वचन, काय, और कृत (स्वयं करना) कारित (दूसरे से कराना) अनुमोदना (किसी के किये हुये को अच्छा समझना) से सब प्रकार के भोजन पान का त्याग कर देना रात्रि भोजन त्याग प्रतिमा है।

इस प्रतिमा से पहले रात्रि भोजन का त्याग केवल कृत और लघु रूप से होता है।

७—ब्रह्मचर्य प्रतिमा।

अपनी विवाहित स्त्री से भी विषय कर्म छोड़कर पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना ब्रह्मचर्य प्रतिमा है।

८—आरम्भ त्याग प्रतिमा।

चूल्हा, चक्की, उखली बुहारी, परींडा (पानी रखने का स्थान) इन पाँचों चीजों से छोटे छोटे जीव जन्तुओं की हिंसा होती है सो इन कार्यों को छोड़ देना एवं व्यापार वाले आरम्भ का भी छोड़ देना आरम्भ त्याग प्रतिमा है। इस प्रतिमा से पहले के श्रावक अपने हाथ से रोटी रसोई बना सकते हैं। इस प्रतिमा तथा इससे आगे वाले नहीं बना सकते। दूसरे के हाथ से बना हुआ भोजन करते हैं।

९—परिग्रह त्याग प्रतिमा।

पहनने के कुछ एक कपड़े और कमण्डलु अपने पास रखकर शेष रुपये, पैसे, धन, आभूषण, मकान, जमीन आदि सब पदार्थों

को छोड़कर दान कर देना या अपने पुत्र आदि को दे देना सो परिग्रह त्याग प्रतिमा है।

१०—अनुमति त्याग प्रतिमा।

गृहस्थ के किसी कार्य्य में सम्मति, (सलाह) आज्ञा देने का त्याग कर देना, उदासीन होकर मन्दिर आदि एकान्त स्थान में धर्म साधन करना अनुमति त्याग प्रतिमा है।

११—उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा।

अपने उद्देश से (खास अपने वास्ते) बने हुये भोजन का त्याग कर देना यानी जो भोजन श्रावक ने खास उस ग्यारहवीं प्रतिमा वाले के लिये न बनाया हो सो शुद्ध भोजन करना उद्दिष्ट भोजन का न करना सो उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा है।

इस प्रतिमा का आचरण पालने वाले दो प्रकार के होते हैं क्षुल्लक और ऐलक। जो छोटी चादर और लंगोट के सिवाय और कोई वस्त्र अपने पास नहीं रखते, बैठ कर भोजन करते हैं वे क्षुल्लक होते हैं। और जिनके पास केवल एक लंगोट के और कोई कपड़ा नहीं होता सारा आचरण जिनका मुनियों सरीखा होता है, खड़े होकर हाथ में भोजन करते हैं सो ऐलक होते हैं।

इस प्रकार गृहस्थ श्रावक का आचरण है।

जैन साधु का आचरण।

संक्षेप से जैन साधु का आचरण इस प्रकार है:—

साधु अहिंसा महाव्रत, सत्य महाव्रत, अचौर्य महाव्रत, ब्रह्मचर्य महाव्रत और परिग्रह त्याग ये पांच महाव्रत धारण करते हैं

यानी हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पाँचों पापों का पूर्ण त्याग कर देते हैं। जंगल या नगर के बाहर बने हुए गुफा, मठ आदि में रहते हैं। बिलकुल नग्न होते हैं, विधि से दिन में एक बार खड़े होकर शुद्ध भोजन करते हैं। जमीन से कमंडलु आदि से जीवों को हटाने के लिये मोर पंखों की एक पीछी, पानी के लिये एक लकड़ी का कमण्डलु तथा शास्त्र अपने पास रखते हैं। संसार से पूर्ण निःस्पृह, अटल ब्रह्मचारी, शान्त, निर्भय और वीतराग होते हैं। जमीन पर रात को थोड़ा सोते हैं। रात को न बोलते हैं और न कहीं आते जाते हैं। कष्ट देने वाले पर क्रोध नहीं करते और न सेवा करने वाले पर प्रेम करते हैं। यह साधारण संक्षेप रूप से जैन साधु का आचरण है।

संसार का विवरण।

यह विस्तृत संसार जिसमें कि पृथिवी, पर्वत, आकाश, नदी, समुद्र, झील, जङ्गल, जल, अग्नि, हवा आदि सब पदार्थ पाये जाते हैं या यों कहिये कि जो सब तरह के जड़ चेतन पदार्थों का घर है। वह संसार अनादिकाल से (यानी जिस समय की कभी शुरूआत नहीं) बराबर चला आ रहा है या मौजूद है और वह अनन्त काल तक (यानी उसका अखीर समय नहीं है) मौजूद रहेगा। कहने का मतलब यह है कि यह संसार न तो किसी एक विशेष (खास) समय में बन कर तैयार हुआ था और न कभी इसका अन्त (नाश-नाबूद-बर्बादी) ही होगी। जैसा सदा से चला आया है वैसा ही हमेशा बना रहेगा।

किन्तु यह अवश्य है कि इस संसार में कारणों के अनुसार परिवर्तन (तबदीली) भी होती रहती है। जैसे कहीं कहीं पर जमीन के नीचे गन्धक आदि स्फोटक (भड़क उठने वाले) पदार्थ पाये जाते हैं। यदि किसी समय वे बहुत जोर से भड़क उठे तो उससे भूकम्प (भूचाल) हो गया जिससे कहीं कोई टापू समुद्र में मिल गया और कहीं से समुद्र का पानी हट गया जमीन निकल आई। कहीं नगर उजड़ कर जंगल हो जाता है, जैसे हस्तिनापुर आदि और कहीं जंगल आदि उजाड़ स्थान तथा पहाड़ी प्रदेश बसा कर सुन्दर नगर बन जाते हैं। जैसे उदयपुर, देहली, आदि इस प्रकार भूचाल, तूफान, शत्रु राजा का आक्रमण आग लग जाना, भारी जल वर्षा होना इत्यादि अनेक कारण पाकर कहीं कैसा ही और कहीं कैसा ही परिवर्तन अपने आप हो जाता है।

इस कारण अनादि समय से बराबर चला आया हुआ संसार विविध कारणों से समय समय पर बदलता रहता है किन्तु उसका पूर्ण नाश (नेस्त नाबूद) न कभी हुआ, न था और न कभी होगा ही।

इसी प्रकार जीवों की भी अवस्था है संसारी जीव भी संसार में अनादिकाल से अब तक अनेक प्रकार के शरीरों में चले आ रहे हैं। जैसे मनुष्य जाति के जीव संसार में पहले हमेशा से (अनादि समय से) थे, रहे हैं और रहेंगे उनके शरीर उत्पन्न होने का खास कोई समय नहीं कि "मनुष्य अमुक समय से ही संसार में पैदा हुए, उस समय से पहले मनुष्यों की संसार में

मौजूदगी नहीं थी।" क्योंकि मनुष्यका शरीर—मनुष्य शरीरधारी माता पिता के रज वीर्य से ही बनता है। ता आज के मनुष्यों को देख कर यह अपने आप मानना पड़ता है कि पिता, दादा, परदादा आदि की लाइन कहीं भी समाप्त नहीं होगी। इसी तरह घोड़े, बैल, बकरी आदि जाति के पशुओं के विषय में भी नियम है। वे भी अपने नर मादा के रज वीर्य से ही पैदा होते हैं। इस कारण उनके पूर्वजों की गिनती भी कहीं समाप्त नहीं होगी।

यह लायन बीज वृक्ष (पेड़) के समान है। जैसे आज एक आम का पेड़ मौजूद है वह किसो (अपने) बीज से पैदा हुआ था वह बीज (आम की गुठली) किसी आम के पेड़ से पैदा हुआ था वह पेड़ भी किसी और बीज से उगा था और उस बीज की उत्पत्ति भी किसी आम के पेड़ से हुई थो। इत्यादि यह बीज पेड़ की लाइन कहीं भी खतम नहीं होगी। जिससे यों माना जा सके कि अमूक समय से ही आम के पेड़ पैदा हुए उसके पहले कोई भी आम का पेड़ नहीं था। क्योंकि जहाँ पर हम यह कहें कि अमुक समय से ही मनुष्य की या आम के पेड़ की पैदायश शुरू हुई तो वहां पर प्रश्न उठेगा कि वह पहला मनुष्य या वह पहला आम का पेड़ कहाँ से पैदा हुआ। उत्तर में कहना पड़ेगा कि उस मनुष्य से तथा उस आम के पेड़ से पहले भी उसके पैदा करने वाले स्त्री पुरुष तथा बीज था। इस कारण संसारी जीवों की अनादि परम्परा सहैतुक (दलीलन) माननी पड़ती है।

कुछ धर्मानुयायियों का यह कहना है कि संसार को तथा उसमें रहने वाले जीवों को परमेश्वर ने किसी खास एक समय

में अपनी ताकत से बनाकर पैदा किया, उसके पहले कुछ नहीं था। तथा किसी समय वह सारे संसार को मिटा भी देगा। ऐसे संसार और जीवों के बनाने तथा बिगाड़ने वाले परमेश्वर को वे त्रिकाल ज्ञाता, (सर्वज्ञ) अशरीर, (निराकार) सर्व शक्तिमान्, (हर एक तरह की सब ताकतों का खजाना) सर्व व्यापक (सब जगह रहने वाला) और न्याय करने वाला इत्यादि स्वरूप मानते हैं।

किन्तु उनका यह मानना ठीक नहीं ठहरता, क्योंकि वह प्राकृतिक (कुदरती) नियमों से विरुद्ध है इसका कारण यह है कि गर्भज जीव अपने नर मादा से ही पैदा होते हैं। परमेश्वर कोई नर मादा नहीं जो शरीर धारी जीवों को पैदा करता फिरे। इसी तरह पृथ्वी, आकाश, हवा, पानी आदि पदार्थ भी शरीर धारी जीवों के लिये हमेशा से मानने पड़ेंगे। जीव हों और ये संसार की चीज़ें न हों यह तो कभी हो ही नहीं सकता।

इसके सिवाय यह भी प्रश्न होता है कि अगर पहले कुछ नहीं था तो फिर इसमें क्या प्रमाण (सुबूत) कि उस समय अकेला परमेश्वर ही था ? तथा परमेश्वर ये चीज़ें लाया भी कहाँ से ? जमीन, पहाड़, सूर्य, चन्द्र, आकाश, जंगल, समुद्र, जीव ईश्वर की किस थैली में रक्खे हुये थे ? यह तो हो नहीं सकता कि वह स्वयम् तो निराकर (वे शकल) और उसने साकार (शकलदार जमीन आदि) पदार्थ यों ही बना दिये। क्योंकि नियम है साकार चीज दूसरी साकार चीज से ही बन सकती है और आकाश, जमीन आदि न होने से स्वयम् (खुद) परमेश्वर भी कहाँ रह सकेगा।

इसके सिवाय एक यह भी बात है कि परमेश्वर कोई खिलाड़ी नहीं जिसको बनाने बिगाड़ने का खेल सूजता रहे । तथा संसार में अन्यायी पापी दुष्ट जीवों के द्वारा आगे (भविष्य में) फैलने वाली खराबियों को जानता हुआ भी परमेश्वर उनको बनाकर क्यों भूल कर गया ? और जब कि वह वास्तव में (असलियत में) सर्व शक्तिमान् है तो संसार की प्रचलित खराबियों को क्यों नहीं दूर कर देता जब कि साधारण अधिकारी (हुकूमतदार) बहुत कुछ शान्ति (अमन-चैन) कर देता है ? इत्यादि ।

ये बातें हैं जो कि सिद्ध (साबित) करती हैं कि संसार और उसके जीवों को न तो परमेश्वर ने बनाया है और न बना ही सकता है ।

इसी कारण कोई मत ईश्वर से संसार की और जीवों की उत्पत्ति किसी ढंग से मानता है और कोई किसी ढंग से। कोई पहले आकाश बनना बताता है, कोई बाग का बनना, तो कोई समुद्र की पहिले उत्पत्ति बतलाता है। कोई पहले पहल केवल स्त्री पुरुष का एक ही जोड़े का उत्पन्न होना कहता है, कोई अनेकों का ।

बुद्धिमान स्वयम् विचार सकते हैं कि यदि पहले कुछ भी नहीं था तो आकाश, पहाड़, समुद्र, पृथ्वी, जंगल आदि ईश्वर ने कहाँ से ला दिये ? और यदि कोई जीव नहीं था तो बिना माता पिता के खून, हड्डी, माँस वाले ये असंख्य पुतले (शरीर धारी जीव) कहाँ से खड़े कर दिये ?

मुक्ति।

जिस समय संसारी जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को अपने उद्योग से बढ़ाता जाता है। उस समय उसके पहले संचित कर्म उसके आत्मा से हटते जाते हैं। आगे के लिये कर्मों का आकर्षण घटता जाता है। उसका वह बराबर लगातार उद्योग यदि पूर्ण उन्नति पा जाता है तो उसका फल यह होता है कि उसके आत्मा से राग द्वेष, अज्ञान आदि दोष तथा सब कर्म, शरीर बिलकुल दूर हो जाते हैं। तब वह जीव स्वभाव से लोकाकाश के सब से ऊपरी भाग में पहुँच जाता है।

मुक्त जीव में पूर्ण ज्ञान, सुख, शान्ति, वीर्य, आदि आत्मिक शुद्ध गुण प्रगट हो जाते हैं। संसार में फिर उसको वापिस आकर शरीर नहीं धारण करना पड़ता।

कुछ लोग यह समझ कर कि "मुक्त होते होते किसी दिन सारा संसार बिलकुल जीव शून्य खाली हो जायगा।" मुक्त जीवों का फिर संसार में लौट आना मानते हैं। उनका यह मानना गलत है।

क्योंकि संसारवर्ती जीव अनन्त हैं। अनन्त उस संख्या (तादाद) को कहते हैं कि जिसमें अनन्त जोड़ देने पर जोड़ अनन्त ही आवे, जिसके साथ अनन्त का गुणा होने पर गुणन-फल भी अनन्त हो और जिसमें अनन्त का भाग देने पर भजन-फल भी अनन्त ही आवे तथा जिसमें से अनन्त घटा लेने पर बाकी भी अनन्त ही रहे। अनन्त शब्द का अर्थ ही यह है कि

जिसका 'अन्त' (अखीर) न हो। इस कारण संसारवर्ती अनन्त जीव राशि में जीव सदा मुक्त होते रहें और मुक्ती से वापिस भी न लौटें तो भी वह जीवराशि अनन्त ही रहेगी।

इसको यों समझ लीजिये कि आकाश अनन्त है। यदि कोई मनुष्य प्रति सैकिण्ड एक हजार मील की शीघ्र चाल से भी एक दिशा में सीधा चलता रहे किन्तु वह हजारों लाखों करोड़ों वर्षों चलते रहने पर भी किसी भी दिन उस आकाश का अन्त नहीं पा सकता। अथवा ईश्वर अनन्त काल तक रहेगा इसका अर्थ यही है कि समय बीतता चला जायगा। किन्तु ईश्वर का समय कदापि समाप्त नहीं होगा। किसी भी मनुष्य के पिता, बाबा आदि पूर्वजों की (पिता परम्परा की) गिनती करने बैठें उसमें भी ये ही बात होगी। पिता उसका पिता, उसका भी पिता, उसका भी पिता आदि बराबर गिनते चले जाइये, गिनते हुये हजारों लाखों वर्ष बीत जावें किन्तु वह पिता परम्परा समाप्त नहीं होगी। क्योंकि वे पूर्वज पुरुष अनन्त हैं। इस कारण इसी प्रकार अनन्त संसारी जीवों में से यदि कुछ जीव मुक्ति प्राप्त करते रहें और लौटें नहीं तब भी संसार कदापि जीव शून्य नहीं हो सकता।

अतएव संसार खाली हो जाने के ख्याल से मुक्त जीवों का संसार में वापिस आना मानना ठीक नहीं।

इसके सिवाय, संसार में जीवों का जन्म, मरण, अनेक योनियों में आना जाना कर्मों के कारण होता है वे कर्म तथा राग द्वेषादि भाव मुक्त जीव के होते नही। इस कारण उनका

संसार में वापिस आकर जन्म लेना असम्भव (नामुमकिन) है। जैसे धान के (छिलके वाला चावल) ऊपर से जब छिलका दूर हो जावे तो वह फिर कदापि नहीं उग सकता।

तथा मुक्त जीव के शरीर नहीं होता, अमूर्तिक आत्मा होती है जो कि मनुष्याकार होता हुआ भी शरीर न होने से परम सूक्ष्म होता है। इस कारण एक ही स्थान पर बहुत से मुक्त जीव रहते हुए भी उनको कोई रुकावट या बाधा नहीं होती। जैसे आकाश, हवा आदि पदार्थ एक ही स्थान पर एक साथ रहते हुए भी एक दूसरे को रुकावट नहीं डालते।

अजैन विद्वानों की सम्मति।

जैन धर्म के विषय में स्वर्गीय श्रीमान् लोकमान्य बाल गङ्गाधर जी तिलक 'मराठी केसरी' में १३ दिसम्बर सन् १९०४ को लिखते हैं:—

"ग्रन्थों तथा सामाजिक व्याख्यानों से जाना जाता है कि जैन-धर्म अनादि है। यह विषय निर्विवाद तथा मतभेद रहित है। सुतरां इस विषय में इतिहास के दृढ़ सुबूत हैं।"

साहित्य-रत्न श्रीमान् ला० कन्नोमल जी एम० ए० सेशन जज धौलपुर लिखते हैं कि :—

"सभी लोग जानते हैं कि जैनधर्म के आदि तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव स्वामी हैं जिनका काल इतिहास परिधि से (तवारीख़ी हद से) कहीं परे है इनका वर्णन सनातनधर्मी हिन्दुओं के श्रीमद्भागवत पुराण में भी है। ऐतिहासिक गवेषणा से (खोजने

से) मालूम होता है कि जैनधर्म की उत्पत्ति का कोई निश्चित काल नहीं है प्राचीन से प्राचीन ग्रंथों में जैनधर्म का हवाला मिलता है।"

मेजर जनरल जे० सी० आर० फरलॉग एफ० आर० एस० ई० आदि सन् १८६७ में अपनी पुस्तक में १३ वें १५ वें पृष्ठ पर लिखते हैं :—

It is impossible to find a begining for Jainism. (Intro P. 13)

Jainism thus appears an earliest faith of India. (Intro P. 15.)

अर्थात् "जैनधर्म के प्रारम्भ का पाना असम्भव है। इस तरह भारत का सबसे पुराना धर्म यह जैनधर्म मालूम होता है।"

इसी प्रकार जैनधर्म के विषय में जिन जिन देशी-विदेशी विद्वानों ने ऐतिहासिक रूप से तथा तात्त्विक रूप से गहरी छान-बीन की है उन सभी ने अपना मन्तव्य इसी रूप में लिख कर प्रकट किया है। जिसको कि यहाँ पर लिखना अनावश्यक समझते हैं। अस्तु।

काल परिवर्त्तन।

संसार में परिवर्त्तन (तबदीली) खास करके दो प्रकार से होती है। उत्सर्पिणी (उन्नति-तरक्की रूप) दूसरा अवसर्पिणी (तनज्जली रूप) कभी उन्नति करने वाला परिवर्त्तन होता है और कभी अवनति कराने वाला।

जिस समय उत्सर्पण काल आता है उस समय दिनों दिन उन्नति होती जाती है मनुष्यों की आयु (उम्र), शक्ति, बुद्धि, विद्या, ऊँचाई, (कद) सुख, शान्ति, पौरुष, वैभव आदि दिन पर दिन बढ़ते चले जाते हैं।

तथा—जब अवसर्पण काल का युग प्रारम्भ होता है उस समय दिन पर दिन अवनति (तनज्जली) होती जाती है। मनुष्य की (जिस्मानी ताक़त और मस्तिष्क शक्ति (दिमाग़ी ताक़त) घटती चली जाती है, उम्र थोड़ी होती जाती है, शरीर का कद छोटा होता जाता है, रोग, दुख, व्याकुलता, चिन्ता बढ़ते जाते हैं, सदाचार, सत्य व्यवहार, परोपकार, अहिंसा भाव, धर्माचार, न्याय कम होते चले जाते हैं। अधर्म, अन्याय, अत्याचार बढ़ते चले जाते हैं।

हमारा यह वर्त्तमान युग (मौजूदा जमाना) अवसर्पण काल का है। जिसको शुरू हुए लाखों करोड़ों वर्ष बीत चुके हैं। अतएव शुरू से ही अवनति होती चली आई और दिनों दिन पतन (गिरावट) होता चला जा रहा है। पहले मनुष्यों की बुद्धि बहुत तेज होती थी जिससे वे आत्मा, परमात्मा, परलोक, कर्म, मोक्ष आदि प्रत्यक्ष-परोक्ष पदार्थों के ज्योतिष, वैद्यक, गायन आदि कलाओं के अनेक अपूर्व ग्रन्थों की रचना कर गये हैं।

अनेक ऋषियों को दिव्यज्ञान और किन्हीं को पूर्ण ज्ञान भी होता था जिससे कि वे एक जगह बैठे बैठे बहुत दूर की परोक्ष बातों को, पिछली और आगे होने वाली बातों को जान लेते थे, मन्त्रबल और विद्याबल से अनेक अद्भुत काम कर सकते थे।

इसी प्रकार शारीरिक शक्ति भी पहले के मनुष्यों की बहुत प्रबल होती थी। हाथियों को उठा कर फेंक देना, पेड़ों को उखाड़ फेंकना, बड़ी बड़ी चट्टानों को पैर की ठोकर से हटा देना उनके साधारण कार्य्य थे। लक्ष्मण, रावण, हनुमान, भीमसेन, कर्ण, द्रोण, अर्जुन, भीष्म, कृष्ण सरीखे बलवान्, योद्धा पुरुष होते थे। अभी दो सो ढाई सो वर्ष पहले के सिपाही भी जो कवच (लोहे का बख्तर) पहन कर जाते थे उसको आज कल आदमी उठा भी नहीं सकते।

इसी प्रकार उनकी आयु (उम्र) भी बड़ी होती थी युवावस्था में किसी किसी का ही मरण होता था। कृष्ण के जमाने में हजारों वर्ष की आयु होती थी उससे पहले और भी बड़ी होती थी। उनकी युवावस्था न तो जल्दी आती थी और न जल्दी जाती थी।

उनके शरीर के कद भी बहुत बड़े होते थे। आज से ढाई हजार वर्ष पहिले १०-११ फीट ऊँचा शरीर होता था उससे पहले और भी अधिक ऊंचा होता था जो कि घटता घटता आज से तीन चार सौ वर्ष पहले ६॥ फीट ऊंचा रह गया था और अब साढ़े चार, पौने पाँच फीट रह गया है तथा दिनों दिन घटता जा रहा है।

इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाले अभ्युदय (पृ० ११ ता० २७ जुलाई १६२६) में छपा था कि अब भी हिमालयपर्वत में मेगू जाति के दीर्घकाय सफेद रङ्ग के मनुष्य हैं जो कि ८ फुट से १२ फुट तक ऊंचे होते हैं।

जिस प्रकार मनुष्यों का कद घट गया है उसी प्रकार आयु भी कम हो गई है। आज कल भारतवर्ष में औसत उम्र २६ वर्ष है और अमेरिका आदि में ४१, ४२ वर्ष की रह गई है। ६०-७० वर्ष तक बहुत कम मनुष्य जीवित रहते हैं। शरीर शक्ति बहुत क्षीण होगई है। यहाँ तक कि प्रायः अपना खाया हुआ भोजन भी नहीं पचा पाते हैं। ३०, ३५ वर्ष की उम्र के पीछे बल्कि इससे भी पहले बूढ़े सरीखे हो जाते हैं।

दिमागी निर्बलता दिनों दिन बढ़ती जा रही है। विचार शक्ति घटती जा रही है। भौतिकज्ञान कुछ अधिक दीख रहा है किन्तु यदि बुद्धिबल पर दृष्टि डाली जाय तो वह पहले से बहुत कम हो गया है। आगे की सन्तान में ये कमजोरियां और भी अधिक बढ़ रहीं हैं। अधर्म, अन्याय, अत्याचार कैसे बढ़ रहे हैं इसके कहने की आवश्यकता नहीं। इत्यादि।

इसी प्रकार जिस समय उत्सर्पणी काल का युग आवेगा तब दिनों दिन उन्नति होना शुरू होगी।

इस प्रकार जैनधर्म का विषय संक्षेप रूप से लिख कर पाठकों के सामने रक्खा गया है आशा है पाठक महाशय इसको प्रेम से पढ़ कर हमारा श्रम सफल करेंगे।

॥ इति शुभम् ॥

श्री 'चम्पावती' जैन पुस्तकमाला की

सर्वोपयोगी पुस्तकें

१—जैनधर्म परिचय

पं० अजितकुमारजी शास्त्री इसके लेखक हैं। पृष्ठ संख्या क़रीब पचास के है। लेखक ने जैनधर्म के चारों अनुयोगों को इसमें संक्षेप में बतलाया है। जैनधर्म के साधारण ज्ञान के लिये यह बहुत उपयोगी है। मूल्य केवल -)॥

२—जैनमत नास्तिक मत नहीं है

यह मि० हर्बर्ट वारन के एक अंग्रेजी लेख का अनुवाद है। इसमें जैनधर्म को नास्तिक बतलाने वालों के प्रत्येक आक्षेप का उत्तर लेखक ने बड़ी योग्यता से दिया है। मूल्य केवल)॥

३—क्या आर्यसमाजी वेदानुयायी हैं?

इसके लेखक पं० राजेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ हैं। इसमें लेखक ने आर्य्यसमाजियों के अनादि पदार्थों के सिद्धान्त, मुक्ति-सिद्धान्त, ईश्वर का निमित्तकारण और सृष्टिक्रम व ईश्वरस्वरूप को बड़ी स्पष्ट रीति से वेद-विरुद्ध प्रमाणित किया है। पृष्ठ संख्या ४४। कागज़ बढ़िया। मूल्य केवल -)

४—वेद मीमांसा

यह पं० पुत्तूलाल जी कृत प्रसिद्ध पुस्तक है। पुस्तकमाला ने इसको प्रचारार्थ पुनः प्रकाशित किया है। मूल्य ।=) से कम करके केवल =) रक्खा है।

५—अहिंसा

इसके लेखक पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री धर्माध्यापक स्याद्वाद विद्यालय काशी हैं। लेखक ने बड़ी ही योग्यता से जैनधर्म के अहिंसा सिद्धान्त को समझाते हुए उन आक्षेपों का उत्तर दिया है जो कि विधर्मियों की तरफ़ से जैनियों पर होते हैं। पृष्ठ संख्या ५२। मूल्य केवल -)॥

६—श्रीऋषभदेव जी की उत्पत्ति असंभव नहीं है

इसके लेखक बा० कामताप्रसाद जैन अलीगंज (एटा) हैं। यह आर्य्यसमाजियों के "ऋषभदेवजी की उत्पत्ति असम्भव है" ट्रैक्ट का उत्तर है। पृष्ठ संख्या ८४ मूल्य ।)

७—वेद-समालोचना

इसके लेखक पं० राजेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ हैं। लेखक ने इस पुस्तक में, अशरीरी होने से ईश्वर वेदों को नहीं बना सकता, वेदों में असम्भव बातों का, परस्पर विरुद्ध बातों का, अश्लील, हिंसा विधान, माँस-भक्षण समर्थन, असम्बद्ध कथन, इतिहास, व्यर्थ प्रार्थनाएं और ईश्वर का अन्य पुरुष से ग्रहण आदि कथन है; आदि विषयों पर गम्भीर विवेचन किया है। पृष्ठ संख्या १२४ मू० केवल ।=)

८—आर्यसमाजियों की गप्पाष्टक

लेखक श्री पं० अजितकुमार जी, मुलतान। विषय नाम से प्रगट है। मू०)॥

९—सत्यार्थदर्पण

लेखक—श्री पं० अजितकुमार जी, मुलतान। हमारे यहाँ से यह पुस्तक दूसरी वार आवश्यक परिवर्त्तन करके ३५० पृष्ठों में छापी गई है। इसमें सत्यार्थप्रकाश के १२वें समुल्लास का भली प्रकार खण्डन किया गया है। प्रचार करने योग्य है। लागत मात्र मूल्य ।।।)

१०—आर्यसमाज के १०० प्रश्नों का उत्तर !

लेखक—श्री पं० अजितकुमार जी, मुलतान। विषय नाम से प्रकट है। पृष्ठ संख्या १००। मूल्य ≥)

११—क्या वेद भगवद्वाणी है ?

लेखक—श्रीयुत् सोऽहं शर्मा। विषय नाम से प्रकट है। पुस्तक पढ़ने एवं विचार करने योग्य है। मूल्य –)

१२—आर्यसमाज की डबल गप्पाष्टक !

लेखक—पं० अजितकुमार जी, मुलतान (पंजाब)। विषय नाम से प्रगट है। मूल्य –)

१३—दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि

लेखक—बा० कामताप्रसाद जी, अलीगंज (एटा)। इस पुस्तक में दिगम्बर मुनियों के स्वरूप के साथ ही साथ उनके दिगम्बरत्व को शिलालेख, शाही फ़र्मान और विदेशी यात्रियों तथा विद्वानों के उल्लेख आदि ऐतिहासिक दृढ़ प्रमाणों द्वारा अनादि सिद्ध किया है। दिगम्बर मुनियों के स्वरूप और उनके आदर्श

को प्रगट करने के हेतु श्री पंच परमेष्ठी, भगवान ऋषभदेव, भगवान पार्श्वनाथ और भगवान महावीर तथा श्री आचार्य्य शान्तिसागर जी महाराज आदि के चित्र भी दिये गये हैं। काग़ज़ २८ पौंड, पृष्ठ संख्या क़रीब ३५०, मूल्य केवल एक रुपया।

१४—आर्यसमाज आगरा के ५० प्रश्नों का उत्तर

लेखक—पं० अजितकुमार जी शास्त्री, मुलतान हैं। विषय नाम से प्रगट है। पृष्ठ संख्या ६४, मूल्य केवल ≈)

१५—जैनधर्म सन्देश

लेखक—पं० अजितकुमार जी शास्त्री, मुलतान। इसमें जैन-धर्म के चारों अनुयोगों का प्रतिपादन गागर में सागर की भांति किया गया है। पृष्ठ संख्या ३२, मूल्य ≈)

१६—आर्य भ्रमोन्मूलन

लेखक—पं० अजितकुमार जी शास्त्री, मुलतान। इस पुस्तक में शास्त्री जी ने आर्य्यसमाज के जैन भ्रमोच्छेदन ट्रैक्ट का करारा उत्तर दिया है। छपाई और काग़ज़ बढ़िया, फिर भी मूल्य –)

१७—लोकमान्य तिलक का जैनधर्म पर व्याख्यान।

यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है और अजैन विद्वानों में बाँटने योग्य है, अभी द्वितीयावृत्ति हुई है। मूल्य)॥

१८—शास्त्रार्थ पानीपत भाग १

यह शास्त्रार्थ जैनसमाज पानीपत और आर्य्यसमाज पानीपत से लिखित हुआ है। इसका विषय "क्या ईश्वर सृष्टि कर्त्ता है"

है। हरेक जैन व अजैन के पढ़ने योग्य है, पृष्ठ संख्या पौने दो सौ के क़रीब है। मूल्य केवल ॥≈)

१६—शास्त्रार्थ पानीपत भाग २

यह पुस्तक उक्त शास्त्रार्थ का दूसरा भाग है। इसका विषय "क्या जैन तीर्थंकर सर्वज्ञ थे" है। हर एक जैन व अजैन के पढ़ने योग्य है। पृष्ठ संख्या २०० के क़रीब है। मूल्य ॥≈)

पुस्तकें मिलने का पता:—

मैनेजर—श्री दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ,

सदर बाज़ार, अम्बाला छावनी।

मुद्रक :—
बाबू कपूरचन्द जैन,
महावीर प्रेस, किनारी बाजार, आगरा।